unacademy

हिन्दी नाटकों की पृष्ठभूमि

हिन्दी नाटकों की शुरुआत का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द को दिया जाता है। उनसे पहले जिन कृतियों का उल्लेख नाटक के रूप में होता है, उनमें नाट्य-तत्त्वों का पर्याप्त अभाव है। इन कृतियों में प्राणचन्द चौहान कृत *रामायण महानाटक* (सन् 1610), हृदयराम कृत *हनुमन्न नाटक* (सन् 1623), लछिराम कृत *करुणाभरण* (सन् 1657), नेवाज की *शकुन्तला* (सन् 1680), महाराजा विश्व नाथ सिंह कृत *आनन्द रघुनन्दन* (अनुमानतः सन् 1700), रघुराय नागर की *सभासार* (सन् 1700),

unacademy

उदय की राम करुणाकर और हनुमान नाटक (सन् 1840) जैसी रचनाएँ शामिल हैं। "ये पद्यात्मक प्रबन्ध हैं।इनमें आनन्द रघुनन्दन ही ऐसी रचना है, जिसमें शास्त्रीय रचना के अनुसार नान्दी, विषकम्भक, भरतवाक्य आदि का प्रयोग किया गया है और रंग-निर्देश भी दिए गए हैं। *आनन्द रघुनन्दन* को हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक माना जाता है। प्रो. दशरथ के अनुसार - "क्या भाषा, क्या आख्यान, क्या गद्य, क्या पद्य, क्या अंक, क्या दृश्य, क्या प्रकृति-चित्रण, क्या चरित्र चित्रण, क्या विचार-दर्शन, क्या सन्देश, सभी ज्ञातव्य विषयों में विश्वनाथ जी समन्व्यवादी

unacademy

प्रतीत होते हैं।" (हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृष्ठ 139) इसलिए विद्वानों ने इसे हिन्दी का प्रथम नाटक घोषित किया है, किन्तु इसमें भी नाट्य-दृष्टि से अनेक दोष हैं। अन्य पूर्ववर्ती कृतियों में अमानत कृत *इन्दर सभा* (सन् 1853) को भी गीतिनाट्य (ऑपेरा) होने पर हिन्दी के साहित्यिक नाटकों की परम्परा से नहीं जोड़ा जा सकता। यह नवाब की महफ़िल की नाटकीय योजना मात्र है। न इसमें कथा तत्त्व है, न चरित्र का विकास।"

तमाम खामियों के बावजूद रीवा नरेश विश्वनाथ सिंह के *आनन्द रघुनन्दन* को

unacademy

हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक माना जा सकता है। हालाँकि यह भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गोपालचन्द के *नहुष*(सन् 1841) की ही भाँति ब्रजभाषा में लिखा हुआ है।

हिन्दी नाटकों की शुरुआतपर न सिर्फ संस्कृत नाटकों का प्रभाव था, बल्कि तत्कालीन अंग्रेज़ी नाटकों, लोक नाटकों के साथ-साथ पारसी थियेटर का भी प्रभाव रहा है। अपने प्रारम्भ की एक लम्बी पृष्भूमि के बावजूद हिन्दी नाटकों की औपचारिक शुरुआत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही मानी जानी चाहिए।

भारतेन्दुयुग

unacademy

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म सन् 1850 के राजनीतिक और सांस्कृतिक उथल-पुथल से भरे समय में हुआ। "जिस समय भारतीय समाज राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तनों के मोड़ से गुज़र रहा था, उस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उसकी ऊर्ध्वमुखी शक्ति को पहचाना और उसे विकासमान बनाने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। रूढ़ियों को प्रबल झटका देकर युगानुकूल मानों की जो अचूक परख उनको प्राप्त थी, उसकी अभिव्यक्ति उनके नाटकों में सर्वत्र दिखाई पड़ती है। पारसी रंगमंच की ह्रासोन्मुख कुत्सित प्रवृत्तियों के

unacademy

विरोध में भारतेन्दु ने नए नाटकों की सृष्टि और नवीन रंगमंच की स्थापना की।"

इस युग के सर्वाधिक प्रभावशाली नाटककार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। उन्होंने मौलिक और अनूदित मिलाकर सतरह नाटकों की रचना की।

प्रधान प्रवृत्तियाँ

भारतेंदु युग के नाटकों में तत्कालीन जीवन का यथार्थ दृष्टिगत होता है। इस युग के नाटककारों ने तत्कालीन सामाजिक समस्याओं

को अपने नाटकों का विषय बनाया। मुख्य रूप से पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक आधारों पर बँटे नाटकों का मुख्य लक्ष्य तत्कालीन समाज में सुधारवादी चेतना का विकास करना था। इस क्रम में इस काल के नाटकों ने जहाँ पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों की रचना के द्वारा साहस, शौर्य, त्याग, बलिदान जैसे उदात्त मूल्यों का संचार हुआ, वहीं सामाजिक नाटकों द्वारा बाल-विवाह और पर्दा-प्रथा का निषेध तथा विधवा-विवाह और स्त्री-शिक्षा के समर्थन का स्वर अभिव्यक्त हुआ है।

unacademy

तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों की आलोचना का स्वर भी इन नाटकों में प्रमुखता से मिलता है। इस काल की महत्त्वपूर्ण विशेषता के रूप में व्यंग्यात्मक शैली के प्रहसनों को रेखांकित किया जा सकता है। मुख्य रूप से भारतेन्दु के इस शिल्प और शैली को उस समय के अन्य नाटककारों ने भी अपनाया।

इस युग के नाटक सरल, रोचक और स्वाभाविक होते थे, इसी कारण वे बेहद लोकप्रिय हुआ करते थे। संस्कृत नाटकों की परम्परा से अलग अपनी निजी परम्परा की

unacademy

शुरुआत का श्रेय भारतेन्दु युग की इन्हीं विशेषताओं की देन है।

प्रवृत्ति के आधार पर देखें, तो इस काल के नाटकों को पौराणिक, ऐतिहासिक, रोमानी, सामयिक; प्रहसन, प्रतीकवादी आदि श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। "इन विविध नाटकों के पीछे तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का विशेष योग था। रोमेण्टिक नाटकों पर रीतिकालीन परिवेश और परवर्ती प्रेमाख्यानकों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। सामाजिक, पौराणिक और व्यंग्यात्मक (प्रहसनों) नाटकों का मुख्य उद्देश्य था -

unacademy

समाज का सुधार-परिष्कार। वास्तविकता यह थी कि पाश्चात्य संस्कृति के अन्धड़ को रोकने के लिए बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह के करुण दृश्य और विधवा-विवाह के चित्र अंकित किए गए। राम-कृष्ण की लीलाओं द्वारा अपनी विस्मृत संस्कृति को याद किया गया। पौराणिक चरित्रों की अवतारणा से सत्य, दान, पतिव्रत आदि के आदर्श उपस्थित किए गए। देश-दुर्दशा-सम्बन्धी नाटकों के द्वारा राष्ट्रीय भावना जगाने का प्रयत्न हुआ। प्रहसनों द्वारा समाज के भ्रष्टाचारियों पर तीव्र कशाघात किया गया।"

unacademy

इस युग में सबसे ज़्यादा पौराणिक नाटक रचे गए। इन नाटकों में भारतेन्दु के चन्द्रावली (सन् 1884), *सत्य हरिश्चन्द्र* और *सती प्रताप* (सन् 1885), अम्बिकादत्त व्यास के *ललिता* (सन् 1884) और *कल्पवृक्ष* (सन् 1886), सूर्य नारायण सिंह के *श्यामानुराग नाटिका* (सन् 1889), कार्तिक प्रसाद खत्री के *उषाहरण* (सन् 1892) देवकीनंदन खत्री के *सीताहरण* (सन् 1876) और *रामलीला* (सन् 1879), ज्वाला प्रसाद मिश्र के *सीता बनवास* (सन् 1895), गजराज सिंह के *द्रौपदी हरण* (सन् 1885), श्रीनिवास दास के *प्रहलाद चरित्र* (सन् 1888), बालकृष्ण भट्ट के *नल-*

unacademy

दमयन्ती स्वयंवर (सन् 1895) जैसे नाटक उल्लेखनीय हैं।

रोमानी नाटकों की शृंखला में श्रीनिवास दास के *रणधीर प्रेम मोहिनी* (सन् 1877) और *तप्ता संवरण* (सन् 1883), खड्ग बहादुर मल्ल के *रति कुसुमायुध* (सन् 1885), किशोरीलाल गोस्वामी के *प्रणयिनी परिणय* (सन् 1890) और *मयंक मंजरी* (सन् 1891), शालिग्राम शुक्ल के *लावण्यवती सुदर्शन* (सन् 1892) और गोकुल नाथ शर्मा के *पुष्पवती* (सन् 1899) के नाम उल्लेखनीय है।

unacademy

रणधीर प्रेम मोहिनी को हिन्दी के पहले दुखान्त नाटक के तौर पर जाना जाता है।

सामाजिक नाटकों की शृंखला में भारतेन्दु का *भारत दुर्दशा,* बालकृष्ण भट्ट का *नई रोशनी का विष* (सन् 1884), खड्गबहादुर मल्ल के *भारत आरत* (सन् 1885), अम्बिकादत्त व्यास के *भारत सौभाग्य* (सन् 1887), राधा कृष्ण दास के *दुखिनी बाला* (सन् 1880), गोपाल राम गहमरी के *देश-दशा* (सन् 1892), काशीनाथ खत्री के *विधवा विवाह* और देवकी नन्दन त्रिपाठी के *भारत हरण* (सन् 1899) उल्लेखनीय हैं।

unacademy

इस युग के प्रहसनों में भारतेन्दु के *वैदिक हिंसा हिंसा न भवति* और *अन्धेर नगरी* बालकृष्ण भट्ट का *जैसा काम वैसा परिणाम* (सन् 1877) और *आचार विडम्बन* (सन् 1899), विजयानन्द त्रिपाठी के *महाअन्धेर नगरी* (सन् 1893), प्रताप नारायण मिश्र के *कलि कौतुक रूपक* (सन् 1886) और राधाचरण गोस्वामी के *बूढ़े मुँह मुँहासे* (सन् 1886) उल्लेखनीय प्रहसन हैं।

इस युग में संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेज़ी भाषाओं से नाटकों का अनुवाद भी किया गया। संस्कृत से भवभूति और कालिदास के नाटकों

unacademy

के अधिक अनुवाद हुए। "भारतेन्दु ने संस्कृत, बांग्ला तथा अंग्रेज़ी तीनों स्रोतों से नाटकों के अनुवाद किए। उनका *दुर्लभ बन्धु* (सन् 1880), अंग्रेज़ी *द मर्चेण्ट ऑफ वेनिस* का रूपान्तरण, शेक्सपियर के हिन्दी में बिल्कुल आरम्भिक अनुवादों में से एक है- शेक्सपियर का पहला हिन्दी अनुवाद माना जाता है *द कॉमेडी ऑफ ऐरर्स* का रतनचन्द द्वारा प्रस्तुत शीर्षक *भरम जालक नाटक* (सन् 1879)।मौलिक नाटकों में विषय, नाट्य रूप, ऐतिहासिक-क्रम हर दृष्टि से वैविध्य द्रष्टव्य है। इनमें से *अन्धेर नगरी* (सन् 1881)को समकालीन क्लासिक की कोटि में गिना जा सकता है। अंग्रेज़ी राज पर

unacademy

तात्कालिक रूप में और शासन सत्ता की प्रकृति पर शाश्वत रूप में यह सरस शैली में लिखा गया उतना ही तीखा व्यंग्य है।"

द्विवेदी युग

नाटक साहित्य में द्विवेदी युग को यदि भारतेन्दु युग की तुलना में समझने का प्रयास करें, तो पाते हैं कि भारतेन्दु युग ने हिन्दी नाटक की औपचारिक शुरुआत के बाद जिस ऊँचाई पर पहुँचाया, उसकी तुलना में द्विवेदी युग का योगदान बहुत कम है। इस युग में न सिर्फ संख्या की दृष्टि से कम नाटक लिखे गए, बल्कि महत्त्व की दृष्टि से भी वे नगण्य

unacademy

हैं। इस काल में विषय-वस्तु की दृष्टि से उन सभी विषयों पर आधारित नाटक लिखे गए जैसे भारतेन्दु काल में लिखे गए पौराणिक, ऐतिहासिक, सामयिक नाटकों के अतिरिक्त प्रहसन भी लिखे गए। इस काल के रचनाकारों ने भी तत्कालीन परिस्थितियों को अपने नाटकों का विषय बनाया।

इस युग के पौराणिक नाटकों में राधाचरण गोस्वामी का *श्रीदामा* (सन् 1904), रामनारायण मिश्र का *जनकबाड़ा* (सन् 1906), बनवारी लाल का *कृष्णकथा* एवं *कंसवध* (सन् 1909), बालकृष्ण भट्ट का *वेणुसंहार* (सन् 1909),

unacademy

ब्रजनंदन सहाय का *उद्धव* (सन् 1909) और नारायण मिश्र का *कंस वध* (सन् 1910), जयशंकर प्रसाद का *करुणालय* (सन् 1912) माखनलाल चतुर्वेदी का *कृष्णार्जुन युद्ध* (सन् 1918) आदि उल्लेखनीय है।

इस काल के ऐतिहासिक नाटकों में गंगाप्रसाद गुप्त का *वीर जयमल* (सन् 1903), वृन्दावन लाल वर्मा का *सेनापति ऊदल* (सन् 1909), बद्रीनाथ भट्ट का *चन्द्रगुप्त* (सन् 1915), जयशंकर प्रसाद का *राज्यश्री* (सन् 1915) और परमेष्ठी दास जैन का *वीर चूड़ावत सरदार* (सन् 1918) उल्लेखनीय है।

unacademy

सामायिक विषय-वस्तु पर आधारित नाटकों में प्रताप नारायण मिश्र का *भारत दुर्दशा* (सन् 1902), भगवती प्रसाद का *वृद्ध विवाह* (सन् 1905), जीवानन्द शर्मा का *भारत विजय* (सन् 1906), कृष्णानंद जोशी का *उन्नति कहाँ से होगी* (सन् 1915) और मिश्रबन्धु का *नेत्रोन्मीलन* (सन् 1915) आदि उल्लेखनीय हैं।

"रोमांचकारी नाटक मुख्यतः रोमांचकारी एवं अलौकिक घटनाओं को केन्द्र में रखकर पारसी रंगमंच की दृष्टि से लिखे गए। इन्हें

unacademy

इतिहासकारों ने मंचीय नाटक भी कहा है। ये नाटक दो प्रकार के हैं - एक वे, जिनकी रचना फ़ारसी प्रेमाख्यानों के आधार पर हुई है और दूसरे वे, जिनकी रचना पौराणिक आख्यानों को लेकर की गई है। ये नाटक व्यवसायी नाटक मण्डलियों के लिए लिखे गए हैं, इसलिए इनके आधार पर तत्कालीन जनसामान्य की रुचि का अनुमान लगाया जा सकता है।रोमांचकारी नाटककारों में मोहम्मद मियाँ 'रौनक', हुसैन मियाँ 'जरीफ', मुंशी विनायक प्रसाद 'तालिब', सैयद मेंहदी हसन 'अहसान' नारायण प्रसाद 'बेताब', आगा मोहम्मद 'हश्र' और राधेश्याम कथावाचक उल्लेखनीय हैं।" (*हिन्दी साहित्य*

unacademy

का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.510) इस काल में लिखे गए प्रहसनों पर पारसी रंगमंच का प्रभाव है। कुछ प्रमुख प्रहसनों में बदरीनाथ भट्ट के *मिस अमेरिका, चुंगी की उम्मीदवारी, विवाह विज्ञापन* आदि का नाम लिया जा सकता है। जी. पी. श्रीवास्तव ने भी कई प्रहसन लिखे। मौलिक नाटकों की कमी द्विवेदी युग में अनूदित नाटकों द्वारा पूरी की गई। सामाजिक तथा राजनीतिक अशान्ति के इस वातावरण में लेखकों को हिन्दी-नाटक साहित्य की हीनता स्पष्ट दिखाई देती थी। अतः कुछ थोड़े उदात्तवादी परम्परा के लोगों का ध्यान संस्कृत नाटकों की ओर गया, परन्तु अधिकांश का

unacademy

अध्ययन बांग्ला तथा पाश्चात्य नाटकों की ओर अधिक था। संस्कृत से लाला सीताराम ने *नागानन्द, मृच्छकटिक, महावीरचरित, उत्तररा मचरित, मालती माधव* और *मालविकाग्निमित्र* और सत्यनारायण कविरत्न ने *उत्तररामचरित* का अनुवाद किया। अंग्रेज़ी से शेक्सपियर के नाटकों *हेमलेट, रिचर्ड द्वितीय, मैकबेथ* आदि का हिन्दी में अनुवाद भी लाला सीताराम ने किया। फ्रांस के प्रसिद्ध नाटककार ओलिवर के नाटकों को लल्लीप्रसाद पाण्डेय और गंगाप्रसाद श्रीवास्तव ने अंग्रेज़ी से अनूदित किया। बांग्ला नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत करने

unacademy

वालों में गोपालराम गहमरी स्मरणीय हैं। उन्होंने *बनवीर, बभ्रुवाहन, देश दशा, विद्याविनोद, चित्रांगदा* आदि बांग्ला नाटकों के अनुवाद किए। बांग्ला नाटकों के अन्य समर्थ अनुवादक रामचन्द्र वर्मा तथा रूप नारायण पाण्डेय हैं। उन्होंने गिरीशचंद्र घोष, द्विजेन्द्र लाल राय, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, मनमोहन गोस्वामी, ज्योतिन्द्रनाथ ठाकुर तथा क्षीरोद प्रसाद के नाटकों का अनुवाद किया। पाण्डेय जी के अनुवाद बड़े सफल हैं, उनमें मूल नाटकों की आत्मा को अधिक सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है।"

प्रसाद युग

unacademy

द्विवेदी युग में नाटकों का विकास उस सीमा तक नहीं हो पाया, जितना भारतेन्दु युग में हुआ। लिहाज़ा नाटक साहित्य के विकास में द्विवेदी युग का योगदान भारतेन्दु युग जितना नहीं है। द्विवेदी युग के बाद जयशंकर प्रसाद, नाटक साहित्य के पथ-प्रदर्शक बन कर उभरे हैं। उनके योगदान की वजह से हिन्दी नाटक के इतिहास का काल प्रसाद-युग के नाम से जाना जाता है। प्रसाद के नाटक लेखन की शुरुआत द्विवेदी युग से ही प्रारम्भ हो गई थी। उनके आरम्भिक नाटक साहित्य में *सज्जन* *(1910), कल्याणी-*

unacademy

परिचय, प्रायश्चित, करुणालय, राज्यश्री जैसी रचनाएँ शामिल हैं। *करुणालय* हिन्दी का पहला गीतिनाट्य है।

हिन्दी नाटक के इतिहास के इस काल में दरअसल प्रसाद एक नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित हुए उनकी ऐसी तमाम नाट्य कृतियाँ इस काल में आईं, जिन्होंने नाटक साहित्य को समृद्ध किया। *विशाख* (सन् 1921), *अजातशत्रु* (सन् 1922), *कामना* (सन् 1927), *जनमेजय का नागयज्ञ* (सन् 1926), *स्कन्दगुप्त* (सन् 1928), *एक घूँट* (सन् 1930), *चन्द्रगुप्त* (सन् 1931)

unacademy

और *ध्रुवस्वामिनी* (सन् 1933) शीर्षक नाट्य कृतियों से प्रसाद का नाटककार रूप प्रतिष्ठित हुआ।

प्रसाद की नाट्यकला पर पाश्चात्य नाटकों का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। प्रसाद युग को समझने के क्रम में ध्यातव्य होगा कि भारतेन्दु ने पारसी रंगमंच की मनोरंजनपरक व्यावसायिक प्रवृत्तियों के विपरीत, ऐसे नाटक लिखे और रंगमंच की नींव मजबूत की, जिसने यथार्थ को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ रंगमंच के अव्यावसायिक पक्ष को भी सुदृढ़ बनाया। द्विवेदी युग के

unacademy

नाटककार इस परम्परा को समुचित रूप से आगे न बढ़ा सके। इस रुके हुए कार्य को प्रसाद और उनके युग के अन्य नाटककारों ने पूरा किया।

प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रसाद युग अपने ऐतिहासिक नाटकों के लिए जाना जाता है।जो एक प्रकार के रोमेण्टिक रुझान से प्रेरित था। फलतः वैयक्तिकता, आवेगमयता, जीवन के प्रति अमिट उल्लास, साहस आदि इन नाटकों के प्रमुख तत्त्व हैं।अपने इतिहास के गौरवमयी पक्ष को इन

unacademy

नाटकों ने वर्तमान की क्षतिपूर्ति के लिए इस्तेमाल किया। इस युग में अन्य प्रकार के नाटकों में पौराणिक, अन्यापदेशिक और अनूदित नाटक भी भी लिखे गए।

इस युग के नाटकों की दूसरी प्रमुख विशेषता नाट्य शिल्प की है, जिसमें भारतीय और पाश्चात्य तत्त्वों का समावेश है।इस युग के नाटकों में जहाँ एक तरफ कथा-वस्तु, रस, नायक, प्रतिनायक, विदूषक, शील-निरूपण, सत्य और न्याय की विजय में भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्पराओं का पालन मिलता है, वहीं दूसरी तरफ पाश्चात्य नाटकों के संघर्ष एवं व्यक्ति

unacademy

वैचित्र्य का निरूपण भी मिलता है।ये नाटक एक तरफ भारतीय नाटकों की रसात्मक अभिव्यंजना को निरूपित करते हैं, तो दूसरी तरफ पाश्चात्य नाटकों की गतिशीलता भी उनमें दिखाई देती है। भारतीय नाटकों की सुखान्त और पश्चिमी नाटकों के दुखान्त विशेषता का समायोजन इस दौर के नाटकों की विलक्षणता कही जा सकती है। खासतौर पर प्रसाद के नाटकों में इस तरह का अन्त मिलता है, जिसे न तो सुखान्त कहा जा सकता, न दुखान्त और इस प्रकार के अन्त को 'प्रसादान्त' की संज्ञा दी गई। अब तक जितने नाटकों की रचना हुई थी उनमें नाटक

unacademy

के पात्रों पर नाटककार की छाया मात्र रहती थी, उनका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं था, प्रसाद ने उन्हें स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान किया

प्रसाद के नाटकों की भाषा संस्कृतशिष्ट होने के कारण अभिनेयता में आड़े आती है। परन्तु प्रसाद के नाटक पूर्णत: रंगमंचीय हैं।

इस काल के अन्य महत्त्वपूर्ण नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मी नारायण मिश्र उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, सियारामशरण गुप्त, उग्र के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस अवधि में हरिकृष्ण प्रेमी ने जिन नाटकों की

unacademy

रचना की उनमें *स्वर्णविहान* (सन् 1930), *रक्षाबन्धन* (सन् 1934), *पाताल विजय* (सन् 1936), *प्रतिशोध* (सन् 1937), *शिवसाधना* (सन् 1937) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रेमी जी के नाटक भी प्रसाद की ही तरह इतिहास के विभिन्न कालखण्डों को अपना आधार बनाते हैं। इसके अलावा हिन्दू-मुस्लिम एकता पर इनका विशेष ज़ोर है। 'प्रेमी' एक सांस्कृतिक चेतना प्रधान नाटककार थे। सेठ गोविन्ददास का *हर्ष*, उग्र का *ईसा* महत्त्वपूर्ण नाटक हैं। वहीं लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में *अशोक* (सन् 1927), *संन्यासी* (सन् 1929), *मुक्ति का*

unacademy

रहस्य (सन् 1932), *राक्षस का मन्दिर* (सन् 1932), *आधी रात* (सन् 1934) के नाम उल्लेखनीय हैं। *संन्यासी* की भूमिका में लक्ष्मीनारायण मिश्र लिखते हैं कि इतिहास के गड़े मुर्दे उखाड़ने का काम इस युग में वांछनीय नहीं। स्पष्ट है कि यह प्रसाद के इतिहास प्रेम और उनके नाटकों में मौजूद ऐतिहासिकता के विरोध और प्रतिक्रिया में था। यद्यपि सन् 1938 के बाद मिश्र जी ने भी ऐतिहासिक नाटक लिखे।

"प्रसाद की कठिनाई यह थी कि वे जिस प्रकार के नाटक लिखना चाहते थे, उनके अनुरूप

unacademy

रंगमच हिन्दी में नहीं था। पारसी रंगमंच सस्ती जनरुचि का पोषक था, अतः प्रसाद के लिए उसे अपनाने का प्रश्न ही नहीं था। उधर हिन्दी का शौकिया रंगमंच नितान्त अविकसित था। फलतः प्रसाद ने साहित्यिक रंगमंच की स्वयं कल्पना की और इस मानसिक रंगमंच की पृष्ठभूमि में ही अपने नाटक लिखे। यदि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की तरह वे भी व्यावहारिक और बहिर्मुखी रहे होते तो सम्भव था कि उनके हाथों हिन्दी रंगमंच का वैसा ही निर्माण हो गया होता, जैसा कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा बांग्ला-रंगमंच का हुआ। प्रसाद अपने काल्पनिक रंगमंच को

unacademy

व्यावहारिक रूप नहीं दे सके, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके नाटक अन्य सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट होने पर भी अभिनय की दृष्टि से सफल न हो पाए।

शान्ता गाँधी *नटरंग* त्रैमासिक में लिखती हैं 'प्रसाद के नाटकों की सभी समस्याएँ सुलझा कर, उन्हें अत्यन्त सफलतापूर्वक रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है और उनका अवश्य ही प्रदर्शन होना चाहिए।' ये 'समस्याएँ' क्या हैं, इन्हें भी समझा जाना चाहिए। प्रसाद के नाटकों के मंचन में जो कठिनाइयाँ सामने आती हैं, उन्हें संक्षेप में यों प्रस्तुत किया जा

unacademy

सकता है- (1) नाटकों का कलेवर सामान्यतया बड़ा है। (2) दृश्यों की संख्या अधिक है। (3) और ये स्वभावतः जल्दी-जल्दी बदलते हैं। (4) पात्र बहुत हैं। (5) कई स्थानों पर त्रुटिपूर्ण मंच विधान है। (6) कहीं कहीं दार्शनिक क्लिष्ट भाषा है। तथ्य के रूप में ये आपत्तियाँ जायज़ हैं, पर ये सभी नाटकीय विधान के व्यावहारिक स्तर हैं और उसी स्तर पर उनका समाधान किया जा सकता है। कई समस्याएँ तो नाटक के सम्पादन और संक्षेपण से सुलझ जाती हैं।"

इस युग के तमाम ऐसे नाटककार हैं, जिन्होंने अपनी नाट्य-रचना द्वारा परिमाणात्मक दृष्टि

unacademy

से इस काल को समृद्ध किया। इस युग में धार्मिक-पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक बहुतायत में लिखे गए। धार्मिक-पौराणिक नाटकों में अम्बिकादत्त तिवारी का *सीय-स्वयंवर नाटक* (सन् 1918), रामचरित उपाध्याय का *देव-द्रौपदी* (सन् 1921), रामनरेश त्रिपाठी का *सुभद्रा* (सन् 1924) तथा *जयन्त* (सन् 1934), गंगा प्रसाद अरोड़ा का *सावित्री-सत्यवान* (सन् 1925), गौरी शंकर प्रसाद का *अजामिल चरित नाटक* (सन् 1926), परिपूर्णानन्द वर्मा का *वीर अभिमन्यु नाटक* (सन् 1926), वियोगी हरि का *छद्म वियोगिनी* (सन् 1928), *प्रबुद्ध यामुन अथवा*

unacademy

यामुनाचार्य चरित (सन् 1929), गोकुल चन्द वर्मा का *जयद्रथ वध* (सन् 1929), कैलाशनागर भटनागर का *भीष्म प्रतिज्ञा* (सन् 1934), लक्ष्मी नारायण गर्ग का *श्रीकृष्णावतार* (सन् 1934), जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का *तुलसीदास* (सन् 1934), हरिऔध का *प्रद्युम्न विजय व्यायोग* (सन् 1936) और *रुक्मिणी परिणय* (सन् 1937), सेठ गोविन्ददास का *कर्तव्य* (सन् 1936), किशोरीदास वाजपेयी का *सुदामा* (सन् 1934) आदि उल्लेखनीय हैं। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली द्वारा 'प्रसाद' के नाटकों का सफल मंचन ब.व. कारंत के निर्देशन में कई बार हो चुका है।

unacademy

इस काल के ऐतिहासिक नाटकों में गणेश दत्त इन्द्र का *महाराज संग्राम सिंह* (सन् 1921), प्रेमचन्द का *कर्बला* (सन् 1928), ज्ञान चन्द्र शास्त्री का *जयश्री* (सन् 1924), बदरी नाथ भट्ट का *दुर्गावती* (सन् 1925) और *चन्द्रगुप्त* (सन् 1928), दशरथ ओझा का *चित्तौड़ की देवी* (सन् 1928) और *प्रियदर्शी सम्राट अशोक* (सन् 1935), जगन्नाथ शरण का *कुरुक्षेत्र* (सन् 1928), लक्ष्मीनारायण गर्ग का *महाराणा प्रताप* (सन् 1929), नत्थीमल उपाध्याय बेचैन का *अत्याचारी औरंगज़ेब* (सन् 1929), चतुरसेन शास्त्री का *उत्सर्ग* (सन् 1929) और *अमर*

unacademy

राठौर (सन् 1933), उदयशंकर भट्ट का *विक्रमादित्य* (सन् 1929) और *दाहर अथवा सिंध पतन* (सन् 1933), धनीराम प्रेम का *वीरांगना पन्ना* (सन् 1934) जैसे नाम लिए जा सकते हैं।

इस काल में लिखे गए सामाजिक नाटकों में विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' का *अत्याचार का परिणाम* (सन् 1921) और *हिन्दू विधवा नाटक* (सन् 1935), प्रेमचन्द का *संग्राम* (सन् 1922), ईश्वरी प्रसाद शर्मा का *कृषक दुर्दशा* (सन् 1922), सुदर्शन का *अंजना* (सन् 1923), *ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट* (सन् 1926) और *भाग्य चक्र* (सन्

unacademy

1937), गोविन्द वल्लभ पन्त का *कंजूस की खोपड़ी* (सन् 1923) और *अंगूर की बेटी* (सन् 1937), रामेश्वरी प्रसाद राम का *अछूतोद्धार नाटक* (सन् 1926), बैजनाथ चावलवाला का *भारत का आधुनिक समाज* (सन् 1926) और *समाज सेवक* (सन् 1933), रघुनाथ चौधरी का *अछूत की लड़की या समाज की चिनगारी* (सन् 1934), महावीर वेनुवंश का *परदा* (सन् 1936), बेचन शर्मा उग्र का *चुम्बन* (सन् 1937) और डिक्टेटर (सन् 1937), रघुवीर स्वरुप भटनागर का समाज की पुकार (सन् 1937), अमर विशारद का *त्यागी युवक* (सन् 1937) और चन्द्रिकाप्रसाद सिंह

unacademy

का *कन्या-विक्रय या लोभी पिता* (सन् 1937) आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रसाद युग में नाटकों की रंगमंचीयता के सवाल को इस दृष्टि से भी समझे जाने की ज़रूरत है कि "नाटक कोई 'पाठ्यपुस्तक' मात्र नहीं है, जैसे कि कहानी और उपन्यास। न उनकी तरह नाटक का सीधा सम्बन्ध 'पाठकों' से होता है, बल्कि नाटक एक जीवन्त अनुभव है, जो अपनी जीवन्तता रंगमंच पर ही प्राप्त करता है। नाटक की सही कसौटी रंगमंच ही है। नाट्य कृति और रंगमंच एक दूसरे के कार्य और कारण हैं, दूसरे स्तर पर एक दूसरे के

unacademy

पूरक और यहाँ तक कि एक दूसरे के पर्याय भी। निस्संदेह रंगमंच की आत्मा नाटकीयता है, तो नाटक की आत्मा रंगमंचीयता। बहुत पहले भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नाटक की इस मौलिकता और रंगमंच से उसके सम्बन्ध को स्थापित करते हुए कहा था कि नाटक का शरीर है वाचिक अभिनय क्योंकि आंगिक और सात्विक अभिनय तथा नेपथ्य आदि सब उसको ही व्यंजित करते हैं। भरतमुनि ने जहाँ नाट्यशास्त्र द्वारा नाटक को नियमबद्ध किया था, वहीं इसकी सम्पूर्ण रचना प्रक्रिया पर, सहयोगी कला रूप और रंगमंचीय कला रूप पर भी विचार किया था

unacademy

जिससे स्पष्ट होता है कि उस समय नाटक और उसके रंगमंच की परम्परा एक लम्बा फासला तय कर चुकी थी, जिसे भरतमुनि ने शास्त्रीय रूप प्रादान किया।"

इस काल के तमाम नाटकों के अतिरिक्त नाट्यरूपक, गीतिनाट्य/भावनाट्य, हास्य व्यंग्य प्रधान नाटक भी लिखे गए। इसके अतिरिक्त हिन्दी में एकांकी नाटकों का प्रचलन भी इसी काल से शुरू हुआ। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि नाटक साहित्य के इतिहास में यह काल न सिर्फ परिमाण,बल्कि गुणवत्ता के लिहाज़ से भी महत्त्वपूर्ण है।

प्रसादोत्तर युग

unacademy

इस काल में नाटक साहित्य, जीवन के यथार्थ से जुड़ा और नाटकों में नई सम्भावनाओं की तलाश की जाने लगी। भारतेन्दु युग में भी लगभग ऐसा ही प्रयास हुआ था, लेकिन हिन्दी नाटक साहित्य के विकास का प्रारम्भिक बिन्दु होने के कारण उस समय यथार्थ की अभिव्यक्ति का चेहरा वही नहीं था, जो इस युग में सम्भव हो पाया।

प्रमुख प्रवृतियाँ

unacademy

इस काल में ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा को पर्याप्त रूप से विकसित होने का मौका मिला। इस युग के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास और कल्पना का अद्भुत समन्वय मिलता है। अधिकांश नाटकों में इतिहास के घटनाक्रमों के साथ-साथ उस समय के सांस्कृतिक वातावरण को भी जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व, युगीन चेतना एवं तात्कालिक सत्य को उद्घाटित करने का प्रयास भी इस काल के नाटकों की एक विशेषता कही जा सकती है। इस काल में लिखे गए पौराणिक और कल्पना

unacademy

आधारित नाटकों के अलावा गीतिनाट्य और प्रतीक नाटक प्रमुखता से लिखे गए।

जहाँ पौराणिक नाटकों में एक तरफ पौराणिक गाथाओं के असम्बद्ध एवं असंगत सूत्रों में सम्बन्ध एवं संगति स्थापित करने का प्रयास देखने को मिलता है, वहीं समस्या प्रधान नाटकों में इब्सन, बर्नार्ड शॉ आदि पाश्चात्य नाटककारों का प्रभाव मिलता है और यह प्रभाव यथार्थवादी नाटकों के प्रादुर्भाव और सामान्य जीवन की समस्याओं का बौद्धिक हल ढूँढे जाने से सम्बन्धित है। इनमें विशेषतः स्त्री पुरुष संबंधों की समस्याओं को लिया गया

है और बाह्य द्वन्द्व की अपेक्षा आन्तरिक या मानसिक द्वंन्द्व अधिक दिखाया गया है।

"प्रेमचन्दोत्तर कहानी में जैसे परम्परा और प्रयोग की दो धाराएँ अलग-अलग दिखती हैं, प्रसादोत्तर नाटक में भी प्रायः वैसी स्थिति है। प्रसाद के समय से ही धीरे-धीरे नाटक दृश्य की बजाय पाठ्य अधिक हो रहा था; सेठ गोविन्ददास तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक उदाहरण हैं। बाद के कुछ नाटककारों ने हिन्दी क्षेत्र के रंगमंच को पुनर्जीवित करने का यत्न किया। कुछ अन्य नाटककार नाटक को महज किताब मान कर लिखते रहे। नाटक

unacademy

को रंगमंच के साथ फिर से जोड़ने में उपेन्द्रनाथ 'अश्क', जगदीशचन्द्र माथुर और भुवनेश्वर ने विशेष रूप से प्रयास किया। 'अश्क' ने व्यावहारिक रंगकर्म में भी बराबर रुचि ली। रंगमंच को सक्रिय करने के लिए एकांकी नाटक लिखे गए, जिस दौर को शुरू करने और गति देने में रामकुमार वर्मा का नाम उल्लेखनीय है।"

उपेन्द्र नाथ 'अश्क' पहले नाटककार हैं, जिनके नाटकों ने छायावादी रोमांस के बरक्स आधुनिक भावबोध को प्रतिष्ठित किया। हालाँकि *जय-पराजय* (सन् 1937) जैसे नाटकों

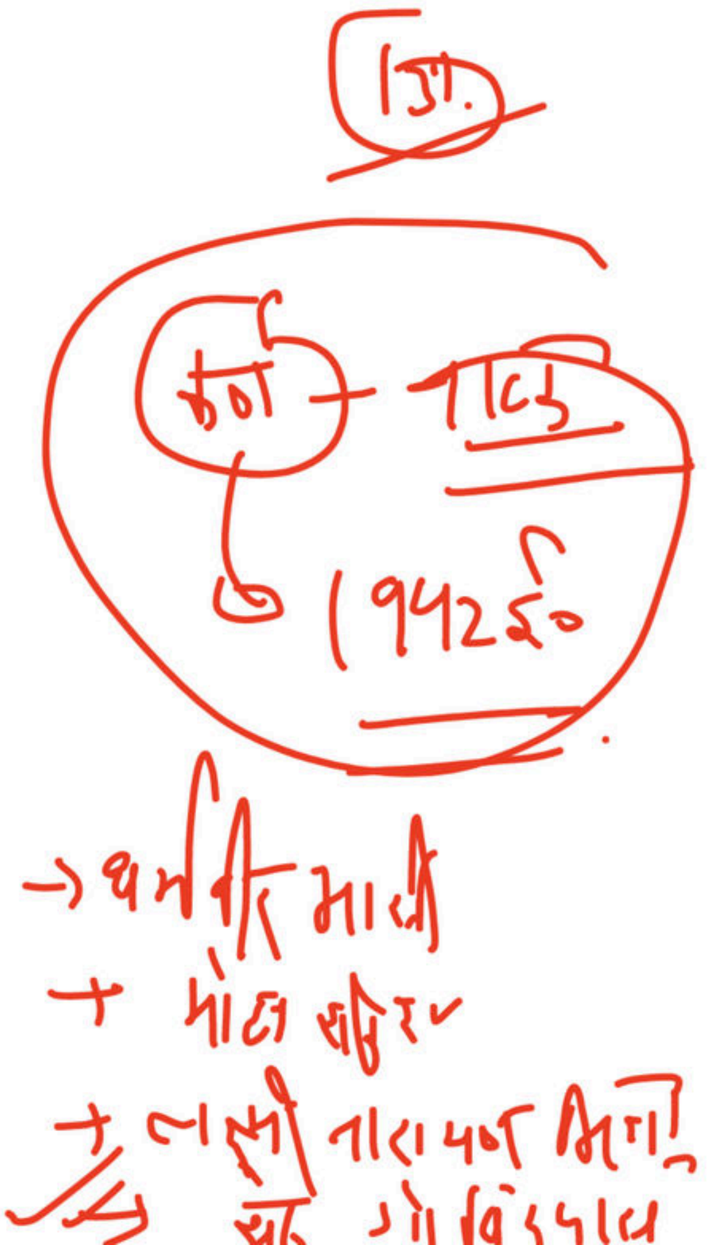
unacademy

में प्रसाद का प्रभाव स्पष्तः देखा जा सकता है। *छठा बेटा* (सन् 1940), *क़ैद* (सन् 1945), *उड़ान* (सन् 1946), *भँवर* (सन् 1950), *अंजो दीदी* (सन् 1954) जैसे नाटकों में जीवन के यथार्थ के विभिन्न आयामों की अभिव्यक्ति दिखती है। इन नाटकों में मंच के प्रति सतर्कता बरतने के कारण इन नाटकों की भाषा यथार्थ के निकट होती गई है। विष्णु प्रभाकर का *डॉक्टर* (1958) इस अवधि का बहुचर्चित नाटक है, जो एक मनोवैज्ञानिक-सामाजिक नाटक है। इसके पहले उनका नाटक *समाधि* प्रकाशित हो चुका था।

unacademy

स्वातन्त्र्योत्तर नाटकों की प्रमुख विशेषताएँ

इस काल के नाटकों को मुख्यतः सामाजिक-सांस्कृतिक, व्यक्तिवादी और राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित नाटकों में बाँटा जा सकता है। स्वतन्त्रता के बाद का यह समय नाटकों के विकास की दृष्टि से इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इस काल में 'संगीत नाटक अकादमी' और 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' की स्थापना ने इसे अनुकूल माहौल उपलब्ध कराया और रंगमंच ने नया रूप ग्रहण किया। इस दौर के सामाजिक-सांस्कृतिक नाटकों में आदर्शोन्मुखी दृष्टि से सामाजिक, नैतिक एवं



unacademy

सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के प्रयास के साथ-साथ आधुनिक जीवन के टूटते हुए मूल्यों की व्याख्या मिलती है। परिवार और सामाजिक जीवन की विसंगतियाँ चित्रित मिलती हैं, तो व्यक्तिवादी नाटकों में व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व से उत्पन्न स्थितियों का चित्रण मिलता है। मोहन राकेश के प्रमुख नाटक इसी वर्ग के अन्तर्गत रखे गए हैं। उनके तीन प्रमुख नाटकों *आषाढ़ का एक दिन* (सन् 1958), *लहरों के राजहंस* (सन् 1963) और *आधे-अधूरे* (सन् 1969) में व्यक्ति और समाज का यह द्वंद्व प्रमुखता से दृष्टिगत होता है।

unacademy

राजनीतिक नाटकों में आधुनिक युग के राजनेताओं के आदर्शों, मूल्यों और विश्वासों के पतन का चित्रण बेहद रोचक तरीके से किया गया है। इसके साथ-साथ सत्ताधारी वर्ग द्वारा किए जाने वाले दुराचार, भ्रष्टाचार, का चित्रण भी मिलता है। इस काल के नाटकों की प्रमुख विशेषता शिल्प और रंगमंच की दृष्टि से इनका सुदृढ़ होना भी है। नाटक एक दृश्य काव्य है और सम्प्रेषण का एक सशक्त माध्यम भी है। वह प्रेक्षक से अपना तादात्म्य स्थापित करता है।

unacademy

जगदीशचन्द्र माथुर ने जिन नाटकों की रचना की उनमें *कोणार्क* उनका महत्त्वपूर्ण नाटक है। डॉ. दशरथ ओझा ने अपनी पुस्तक *आज का हिन्दी नाटक : प्रगति और प्रभाव* में लिखा है, "कोणार्क के रचयिता ने कुल-रीति भंजक शिल्पी विशु का समयानुसार चरित्र दिखाकर विसंगति नाटककार के रूप में प्रसिद्धि पाई।

जगदीश चन्द्र माथुर कृत *शारदीया* (1959) एक ऐतिहासिक नाटक है। सन् 1969 में प्रकाशित उनका नाटक *पहला राज्य* शिल्प और वस्तु की दृष्टि से अत्यन्त उल्लेखनीय है। इस नाटक में "पौराणिक सन्दर्भ में आधुनिक युग बोध

unacademy

का एक मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है।" (प्रो. रामजन्म शर्मा, *स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : वस्तु और शिल्प*, पृष्ठ 96) बाद में उन्होंने दशरथ नंदन एवं *रघुकुलरीति* (1974) जैसे महत्त्वपूर्ण नाटकों की रचना की।

इस युग के अन्य महत्त्वपूर्ण नाटककार धर्मवीर भारती हैं। इनका गीति-नाट्य अन्धा-युग (सन् 1955) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह गीति-नाट्य महाभारत के अठारहवें दिन की संध्या से प्रभास-तीर्थ में कृष्ण के देहावसान तक की कथा पर आधारित है। दुष्यंत कुमार का *एक*

unacademy

कंठ विषपायी (1963) एक महत्त्वपूर्ण गीतिनाट्य है।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने कई नाटकों की रचना की है। इन नाटकों में *अन्धा कुआँ* (सन् 1955), *मादा कैक्टस* (सन् 1959), *तीन आँखों वाली मछली* (सन् 1960), *सुन्दर रस, सूखा सरोवर* (सन् 1960), *रक्त कमल* (सन् 1962), *रात रानी* (सन् 1962), *दर्पण* (सन् 1963), *सूर्यमुख* (सन् 1968), *कलंकी, मिस्टर अभिमन्यु* (सन् 1971), *कर्फ्यू* (सन् 1972) आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। रंगमंच की दृष्टि से लाल के सभी नाटक अभिनेय है।

unacademy

"अपने व्यक्तित्व की पहचान, पारम्परिक नाट्यदाय का अन्वेषण और एक नई, अधिक मौलिक तथा प्रामाणिक नाट्यशैली की खोज छठे दशक के भारतीय रंगमंच की मुख्य प्रवृत्ति है और उसकी सबसे बड़ी घटना है। अन्वेषण तथा प्रामाणिकता की इसी भावना ने समसामयिक भारतीय रंगमंच की नई चेतना का विकास किया है। इस नई चेतना के विविध रूपों और पक्षों में सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि आज लगभग दो शताब्दियों के आधुनिक भारतीय रंगमंच के इतिहास में पहली बार यह सम्भव हो पाया है कि हम एक प्रकार के

unacademy

'राष्ट्रीय' रंगमंच की तस्वीर उभरते हुए देखते हैं। 'राष्ट्रीय' रंगमंच से मेरा तात्पर्य केवल इतना ही है कि आज हमारे नाटक और रंगमंचीय क्रियाकलाप में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं और ऐसे रूपों और शैलियों का विकास हो रहा है, जिनमें अस्मिता का स्वर मुखर है और जिनका स्वरूप देशव्यापी है।"

मोहन राकेश के *आषाढ़ का एक दिन* (सन् 1958), *लहरों के राजहंस* (सन् 1963) और *आधे-अधूरे* (सन् 1969) गहन मानवीय त्रासदी को रचनात्मक ढंग से परखने वाले नाटक

unacademy

हैं। *आषाढ़ का एक दिन* जहाँ महाकवि कालिदास के परिवेश, रचना-प्रक्रिया, प्रेरणा-स्रोत और उनके चुक जाने से सम्बद्ध है, वहीं *लहरों के राजहंस* आध्यात्मिक भावभूमि को राग-विराग के द्वंद्व के साथ देखने परखने की कवायद है। *आधे-अधूरे* अपने युग-बोध के साथ मध्यवर्गीय जीवन विडम्बनाओं को समझने का प्रयास है।

मोहन राकेश ने रंगमंच और अभिनेयता की दृष्टि कि नाट्यरचना से नाट्यरचना के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। राकेश इस काल के सबसे महत्त्वपूर्ण नाटककार हैं। उनके

नाटकों ने रंगमंच एवं अभिनेयता को एक नया आयाम दिया। उन्होंने अपने नाटक *आधे अधूरे* में पति-पत्नी के घिस-घिस कर टूटते सम्बन्धों के अन्तर्द्वन्द्व को जिस कलात्मकता से प्रस्तुत किया है, वह अन्यत्र दुलर्भ है।

"छायावादोत्तर काल की अन्य नाट्य कृतियों को स्थूल रूप से तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- 1.स्वतन्त्र भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार से सम्बद्ध नाटक, 2. पीढ़ीगत संघर्षों का नैतिक मूल्यों से सम्बद्ध नाटक, 3. चीनी आक्रमण से सम्बद्ध नाटक।"

unacademy

पहली श्रेणी के अन्तर्गत चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के *न्याय की रात* और विनोद रस्तोगी के *आज़ादी के बाद* तथा *नया हाथ* नाटक रखे जा सकते हैं। *न्याय की रात* समाज को तोड़ने वाले तत्त्वों और स्वयं समाज के द्वन्द्व पर आधारित है। इसलिए इसमें संघर्ष की स्थितियाँ स्वाभाविकता लिए हुए है और विश्वसनीय हैं। थोड़ी कमियों के बावजूद यह रेखांकित करने योग्य नाटक कहा जा सकता है। *आज़ादी के बाद* नाटक सामाजिक-आर्थिक विषमता और शोषण से मुक्ति के ताने-बाने पर रचा गया है। *नया*

unacademy

*हाथ*नाटक का नायक रूढ़ नैतिकता और झूठी मर्यादा के विरोध में खड़ा है। इन दोनों ही नाटकों पर गाँधीवादी जीवन-दर्शन का प्रभाव है, लेकिन वाह्य स्थितियों, संघर्षों और विचारों कि इतिवृत्तात्मक बहुलता के कारण न तो इनमें नाटकीय स्तर की गहनता है और न ये आधुनिक बोध से ही परिपूर्ण हो पाए हैं। दूसरी श्रेणी के नाटकों में नरेश मेहता के *सुबह के घण्टे*और *खण्डित यात्राएँ*शीर्षक नाटकों तथा मन्नू भण्डारी के *बिना दीवारों के घर*को रखा जा सकता है। *खण्डित यात्राएँ*में पुरानी पीढ़ी की तकलीफ़ ज़रूर उभरती है, पर उसका आन्तरिक गढ़न बेहद कमज़ोर है। मन्नू

unacademy

भण्डारी के *बिना दीवारों के घर* में पति-पत्नी के बीच का तनाव विश्वसनीय लगता है, क्योंकि आज के जटिल समय में पढ़ी-लिखी पत्नी औरपति के बीच इस तरह का तनाव पनपना स्वाभाविक है। तीसरी श्रेणी की रचनाओं में शिव प्रसाद सिंह की *घण्टियाँ गूँजती हैं* और ज्ञानदेव अग्निहोत्री की *नेफा की एक शाम* को रखा जा सकता है। *घण्टियाँ गूँजती हैं* में चीन-भारत-युद्ध का व्यापक फलक लिया गया है,तो *नेफा की एक शाम* में चीनी आक्रमण के प्रतिरोध में आदिवासियों की एकजुटता की सार्थकता सिद्ध की गई है,

unacademy

लेकिन दोनों ही नाटक बहुत प्रभावशाली नहीं कहे जा सकते।

समकालीन नाटकों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

इस काल के नाटकों में 'नएपन' और 'प्रयोगशीलता' की तलाश स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इस प्रयत्न ने हिन्दी नाटकों को नई रंग-चेतना और ज़मीन दी। मोहन राकेश के बाद का हिन्दी नाटक निराशा और पराजय बोध से बाहर निकल कर संघर्ष और आस्था की तरफ बढ़ा।

unacademy

इस समय के नाटकों में लोक-संवेदना का विकास और पश्चिमी अन्धानुकरण से अलग अपने खुद के अस्तित्व की तलाश दिखती है। हर दिन विकसित होती तकनीक के तमाम आयामों ने मिलकर नाटक साहित्य को नई तकनीक से जोड़ा,फलस्वरूप नाटक साहित्य अपनी सम्प्रेषणीयता के नुक्ते से सुदृढ़ होता गया। इस दौर के अधिकांश नाटककारों ने सामाजिक-राजनीतिक सन्दर्भों को कथ्य के नए मुहावरे में ढालकर प्रस्तुत किया और जीवन के अन्तर्विरोधों, तनावों, जटिल परिवेशगत स्थितियों को अभिव्यक्ति दी। भीष्म साहनी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,

unacademy

मुद्राराक्षस और ज्ञानदेव अग्निहोत्री जैसे तमाम नाटककारों में यह प्रवृत्ति सहज ही दिख जाती है।

साठ के बाद समाज में उपजे मोहभंग को भी इस कालखण्ड के नाटकों में अभिव्यक्ति मिली, तो सातवें आठवें दशक का संघर्ष भी इस काल के नाटकों का कथ्य रहा। इस दौर के नाटकों की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह रही कि उसने तमाम समकालीन विद्रूपताओं का अंकन करते हुए नए मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

unacademy

प्रयोगधर्मी नाटककारों ने एक तरफ पद्य नाटक या काव्य नाटक में नए शिल्प की तलाश की तो प्रगतिशील विचारधारा से लैस नुक्कड़ नाटकों ने रंगमंच की सीमाओं से नाटकों को मुक्त कर जनता के बीच ले जाने का साहसिक उपक्रम किया।

इस काल में शेक्सपियर, वाइल्डर, ब्रेख्त, सैमुअलबैकेट, कैरेल, चैपक आदि के प्रसिद्ध नाटकों का भारतीय रंग-परंपरा के अनुसार अनुवाद किया गया।

unacademy

"1960 के बाद हिन्दी-नाटकों में प्रयोग का सिलसिला जारी रहा और बहुत कुछ अच्छे प्रयोगों द्वारा हिन्दी के अपने नाट्य-रूपों का अनुसन्धान किया गया। प्रयोग के लिए नाटकों का क्षेत्र अत्यन्त उर्वर है। पर कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोगों के अतिरिक्त अन्य प्रयोग, केवल प्रयोग के लिए किए गए। उनमें न विषय की गहराई मिलेगी, न जीवन की व्यापकता। फिर भी इनसे नाटक की भाषा को एक नया आयाम मिला है।"

विपिन कुमार अग्रवाल ने एब्सर्ड नाटक लिखे, जिनमें *तीन अपाहिज* विशेष चर्चित रहा। एब्सर्ड

unacademy

नाटक परम्परावादी मंच को तोड़ते हैं। इन नाटकों की शृंखला में शम्भुनाथ सिंह की *दीवार की वापसी,* लक्ष्मीकान्त वर्मा का *अपना-अपना जूता,* रमेश बक्षी का *भग्न स्तूप का अक्षत स्तम्भ और* मणि मधुकर का *रस गन्धर्व* के नाम लिए जा सकते हैं। सन् 1970 के बाद नाटकों की एक नई धारा प्रवाहित हुई। सातवें दशक में नाट्य रचना के क्षेत्र में कुछ नए प्रयोग किए गए। इस काल के नाटकों में मिथकीय चरित्रों को प्रमुख स्थान दिया गया।" मिथक को आधुनिक सन्दर्भों में रूपायित किया गया।" *(स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : वस्तु और शिल्प)* मिथकीय नाटकों में सुरेन्द्र वर्मा

unacademy

का *आठवा सर्ग, द्रौपदी, सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक;* गिरिराज किशोर का *प्रजा ही रहने दो;* दया प्रकाश सिन्हा का *कथा एक कंस की;* नरेन्द्र कोहली का *शंबूक की हत्या;* शंकर शेष का *एक और द्रोणाचार्य,* लक्ष्मीकांत वर्मा का *एक ठहरी हुई जिन्दगी;* लक्ष्मीनारायण लाल का *राम की लड़ाई* प्रमुख हैं। सन् 1970 के असंगत या विसंगत (एब्सर्ड) कहे जाने वाले नाटकों की रचना भी हुई।

दरअसल, इस तरह के प्रयोग नाटकों के क्षेत्र में नए मुहावरों की तलाश ही थी, जिसने इस दिशा में तमाम सर्जनात्मक सम्भावनाओं की

unacademy

तलाश की। "अधिकांश नए नाटकों ने सामाजिक-राजनीतिक सन्दर्भों को कथ्यानुभव के नए मुहावरे में ढालकर सर्जित किया। जीवन की विसंगतियों, अन्तर्विरोधों, तनावों, जटिल परिवेशगत स्थितियों को नए रूपतन्त्र के कौशल से नाट्य-रचना-प्रक्रिया में अभिव्यक्ति दी। इस दृष्टि से भीष्म साहनी के *हानूश, कबिरा खड़ा बाज़ार में,* सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के *बकरी, लड़ाई, कल भात आयेगा,* ज्ञानदेव अग्निहोत्री के *शुतुरमुर्ग,* मणि मधुकर के *रस गन्धर्व,* लक्ष्मीनारायण लाल के *मि. अभिमन्यु, अब्दुल्ला दीवाना,* मुद्राराक्षस के *मरजीवा, तेंदुआ,* सुशील कुमार सिंह

unacademy

के *सिंहासन खाली है*, शंकर शेष के *एक और द्रोणाचार्य*, हमीदुल्ला के *एक और युद्ध, समय सन्दर्भ*, दया प्रकाश सिन्हा के *कथा एक कंस की*, सुरेन्द्र वर्मा के *सूर्य के अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, सेतुबंध, आठवाँ सर्ग*, मृदुला गर्ग के *एक और अजनबी*, बृजमोहन शाह के *त्रिशंकु*, बलराज पण्डित के *पाँचवा सवार* आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों ने सामाजिक-राजनीतिक जीवन के भ्रष्टाचार, पाखण्ड, क्रूरता, अमानवीयता, मध्यवर्ग के जीवन की अभाव भरी कराह व्यक्ति के विघटन और जीवन की यान्त्रिकता

unacademy

पर प्रखर-आत्म-सजग, विवेक व्यस्क वैचारिकता से सवाल उठाये हैं।"

पृथ्वी थियेटर के बरक्स 'भारतीय जन नाट्य संघ' और 'जन नाट्य मंच' जैसी नाट्य संस्थाओं की भी नाटकों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। राजनीतिक चेतना से लैस इनके नाटकों का उद्देश्य जनता कोजाग्रत करना था। नुक्कड़ नाटकों की परम्परा और नाटकों की जनोप्लब्धता जैसे बिन्दुओं के विकास के साथ इन संस्थाओंने नाटक साहित्य को जनपक्षधर बनाने के लिहाज़ से अपना योगदान दिया।

unacademy

नाटकों के स्वरूप में विभिन्न प्रयोगों की शृंखला में एकांकी नाटकों का प्रचलन प्रसाद युग में ही प्रारम्भ हो चुका था। कुछ प्रमुख एकांकीकारों में भुवनेश्वर प्रसाद, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, जगदीशचन्द्र माथुर और गणेशचन्द्र माथुर के नाम उल्लेखनीय हैं।प्रसादोत्तर युग में एकांकी नाटकों का विकास हुआ।सन् 1936 में दिल्ली और सन् 1938 में लखनऊ में आकाशवाणी के अस्तित्व में आने और सन् 1940 के आसपास उनपर हिन्दी और उर्दू एकांकियों के प्रसारण ने एकांकी के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।सन् 1938

unacademy

में *हंस* के एकांकी नाटक विशेषांक में इस विधा को लेकर बहस चल रही थी। इस विशेषांक में आठ एकांकियों के साथ चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का एक पत्र भी प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने साहित्य में एकांकी के अस्तित्व पर सवाल उठाए। इसके बिल्कुल उलट उपेन्द्रनाथ अश्क ने एकांकी को नाटक, कहानी और सम्भाषण से पृथक एक स्वतन्त्र विधा के रूप में स्वीकृति दी। वहीं जैनेन्द्र ने पश्चिम के बरक्स भारत की परिस्थितियों को एकांकी के लिए मुफीद नहीं माना जिसका खण्डन हंस के तत्कालीन सम्पादक ने किया।इस तरह से देखें तो एकांकी साहित्य का विकास क्रमशः होता रहा। इस

युग में भुवनेश्वर के कुछ ही एकांकी प्रकाशित हुए, जिनमें - *ताँबे के कीड़े, सिकन्दर* आदि प्रमुख हैं। रामकुमार वर्मा के अधिकांश एकांकी-संग्रह– *रेशमी टाई, चारुमित्रा, विभूति, सप्तकिरण, रूपरंग, रजत रश्मि, दीपदान, ऋतुराज, रिमझिम, इन्द्रधनुष, पांचजन्य, कौमुदी महोत्सव, मयूरपंख, जूही के फूल* का प्रकाशन सन् 1940 के बाद हुआ। उदयशंकर भट्ट ने सन् 1938 के बाद एकांकी-लेखन प्रारम्भ किया। *स्त्री का हृदय, चार एकांकी, समस्या का अन्त, धूमशिखा, अन्धकार और प्रकाश, आदिम युग परदे के पीछे, आज का आदमी, सात प्रहसन* आदि उनके एकांकी-संकलन हैं।भट्ट

जी ने अपने एकांकियों को अपने समय की ज्वलन्त समस्याओं से जोड़ने का प्रयास किया। एकांकीकारों की फेहरिस्त में उपेन्द्रनाथ अश्क का विशिष्ट स्थान है। *देवताओं की छाया में, चरवाहे पक्का गाना, पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ, अन्धी गली, साहब को ज़ुकाम है, पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी* आदि उनके महत्त्वपूर्ण एकांकी संग्रह हैं।

एकांकीकारों की इस फेहरिस्त में सेठ गोविन्ददास, हरिकृष्ण 'प्रेमी', विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, भारत भूषण अग्रवाल, विनोद रस्तोगी,

unacademy

विमला लूथरा, रेवती सरन शर्मा, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, चिरंजीत, सत्येन्द्र शरत, सिद्धनाथ कुमार के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं।

"हिन्दी नाटक का सातवाँ-आठवाँ दशक प्रयोगधर्मी नाट्य-परम्परा की दृष्टि से पूरे हिन्दी नाटक के विकास में एक नया अध्याय जोड़ता है। नए-पुराने हिन्दी नाटकों को जो महत्त्व मिला है, उसके मूल में हिन्दी रंगमंच का सही दिशा में विकास है। अब हिन्दी रंगमंच विदेशी नाटकों, शैलियों का मोहताज नहीं है; उसकी एक अपनी रंग परम्परा और

unacademy

रंग-दृष्टि विकसित हुई है। इन वर्षों में हिन्दी नाटक और रंगमंच को ब. व. कारन्त, इब्राहिम अल्काजी जी, सत्यदेव दुबे, श्यामानन्द जालान, राजिन्दरनाथ, वंसी कौल, बृजमोहन शाह, एम. के. रैना, भानु भारती, देवेन्द्रराज अंकुर जैसे निर्देशकों की प्रतिभा का सुयोग प्राप्त हुआ है।इन सभी ने अपनी रंग-दृष्टि की सर्जनात्मकता, कल्पनाशीलता और विचार-क्षमता से हिन्दी रंगमंच को सम्पन्न और समृद्ध बनाया है। आज के हिन्दी-नाटक में देश भर के नाटकों की सर्जनात्मक चेतना का स्पर्श समा रहा है। इस ढंग से हिन्दी नाटक का एक अखिल भारतीय नाट्य-चक्र तैयार

unacademy

हुआ है और लक्ष्मीनारायण लाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, सुरेन्द्र वर्मा आदि के नाटक हिन्दी से दूसरी भाषाओं में अनूदित होकर खेले गए हैं।"

इस तरह हिन्दी नाटकों का समग्र विकास हिन्दी रंगमंच और अन्य भारतीय भाषाओं के नाटकों के विकास समानान्तर हुआ है। पाश्चात्य नाटक साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का असर भीहिन्दी नाटकों पर रहा। एक-दूसरे से प्रभावित होने की इस प्रवृत्ति ने हिन्दी नाटकों को न सिर्फ समृद्ध किया, बल्कि

unacademy

अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में भी योगदान दिया।

अपनी विकास यात्रा में हिन्दी नाटक साहित्य भिन्न-भिन्न पड़ावों से गुज़रा है और इस क्रम में अपने युग-बोध और परम्परा को साधते हुए अपने विशिष्ट स्वरूप को विकसित किया है। यदि भारतेन्दु काल के नाटक साहित्य की बात करें, तो उसके समक्ष नाटक साहित्य के स्वरूप के विकास के साथ-साथ हिन्दी रंगमंच के विकास की चुनौती भी थी। पारसी रंगमंच के प्रभावों से अलग एक ऐसे रंगमंच का विकास करना, जो नाटक के साहित्यिक और

unacademy

तत्कालीन सामाजिक आवश्यकताओं की अपेक्षाओं पर बराबर खरा उतरता हो - एक कठिन काम था, जिसे भारतेन्दु युग के नाटककारों ने बखूबी निभाया।

द्विवेदी युग, नाटक के इतिहास के लिहाज़ से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण इसलिए भी नहीं कहा जाता कि इस युग ने अपने पहले और बाद के क्रमशः भारतेन्दु और प्रसाद युग जैसा योगदान नहीं दिया।बावजूद इसके नाटक साहित्य के विकास की निरन्तरता की दृष्टि से यह काल महत्त्वपूर्ण है।

unacademy

प्रसाद युग ने नाटकों में तमाम सम्भावनाओं की पड़ताल करते हुए नाटक के विकास को एक नई ऊर्जा दी।रंगमंच और नाटक की अन्योन्याश्रित सम्बन्धों को रेखांकित किया।प्रसादोत्तर युग के नाटकों को नाटक साहित्य में विभिन्न प्रयोगों के लिए याद किया जाएगा। इस पूरी विकास यात्रा में हिन्दी नाटक विभिन्न स्वरूपों में ढलता हुआ आज एक ऐसे पायदान पर खड़ा मिलता है, जहाँ उसके पास संस्कृत नाट्य साहित्य से लेकर पश्चिम और तमाम भारतीय भाषाओं के नाट्य साहित्य का अनुभव है। रंगमंच से अपने सम्बन्धों को लगातार पुख्ता करता हुआ यह अपने विकास

unacademy

पथ पर अग्रसर है। आज के नाटकों के लेखन में रंगमंच की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

"पाश्च की उमस से आकुल
तिक्त मधुर विषतंतु खोजते"